FOLLOW US ON: Anokha Teer Harda @anokhateer

दैनिक अनोखा तीर की पाक्षिक प्रस्तुति...

तपती धरती

हरदा- बुधवार 15 नवम्बर 2023

www. anokhateer.com

अगले सात साल में दुनिया का सबसे बड़ा कार्बन मार्केट होगा भारत

एक नए अध्ययन से पता चला है कि देश में कार्बन एमिशन कम करने की गतिविधियों पर होने वाले खर्चे में 28 फीसद की कमी आयी है। इतना ही नहीं, विशेषज्ञों का मानना है साल 2030 तक भारत दुनिया का सबसे बड़ा कार्बन बाजार बन जाएगा।

दरअसल साल 2020-21 में लागू किए गए इस कार्बन मार्केट सिमुलेशन अध्ययन में 21 बड़े भारतीय कारोबारों, जो भारत के औद्योगिक क्षेत्र से उत्पन्न होने वाले कुल एमिशन के लगभग 10 प्रतिशत हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं, को शामिल किया गया। साथ ही साथ कार्बन बाजार के सभी तत्वों, जैसे बेसलाइन और लक्ष्य का निर्धारण, मापन, रिपोर्टिंग और प्रमाणन को शामिल किया गया। इस अध्ययन की रिपोर्ट के निष्कर्षों हाल ही में मुंबई में आयोजित बिजनेस20 (बी20) - थिंक20 (टी20) कार्यक्रम में साझा किया गया।

बी20 और टी20 दरअसल जी20 के आधिकारिक कार्य समूह हैं। वर्ल्ड रिसोर्सेस इंस्टीट्यूट इंडिया की अगुवाई में किए गए इस अध्ययन में कार्बन बाजारों को लेकर 15 साल के अंतरराष्ट्रीय अनुभव को समाहित किया गया है। इसके अलावा एमबीएम इकाइयों के साथ 10 साल के घरेलू अनुभव को भी शामिल किया गया है। साथ ही साथ भारतीय उद्योग की जरूरतों, उसके सामने खड़ी चुनौतियों और परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए बड़े भारतीय कारोबारियों के साथ सलाह-मशवरे तथा कार्बन बाजार के अपनी तरह के पहले सिमुलेशन को भी इसके दायरे में लिया गया है।

विश्व बैंक के अनुसार कार्बन बाजार अब दुनिया के कुल उत्सर्जन के 16 प्रतिशत हिस्से को आच्छादित करते हैं। भारत के औद्योगिक क्षेत्र को कवर करने वाला यह एक ऐसा कार्बन बाजार है जो भारतीय कॉर्पोरेट क्षेत्र द्वारा मौजूदा स्वैच्छिक प्रतिबद्धताओं के औसत महत्वाकांक्षा स्तर के साथ सरेखित लक्ष्य को भी निर्धारित करता है। साथ ही साथ वर्तमान नीति परिदृश्य की तुलना में 2030 में सकल घरेलू उत्पाद की उत्सर्जन तीव्रता को 5.6 प्रतिशत तक और कम करने की क्षमता रखता है, जो 2022 और 2030 के बीच 1.3 बिलियन मेट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड ईक्विवेलेंट की संचयी कमी के बराबर है। सीओपी 26 की बैठक के दौरान भारत ने वर्ष 2030 तक जीडीपी में प्रति इकाई 45 प्रतिशत की दर से उत्सर्जन तीव्रता में कटौती करने और वर्ष 2017 तक नेट जीरो का लक्ष्य हासिल करने की महत्वाकांक्षा का ऐलान किया था।

भारत ने यह भी घोषणा की थी कि उसका लक्ष्य वर्ष 2030 तक कार्बन उत्सर्जन में एक बिलियन मेट्रिक टन की कटौती करने का है। इस अध्ययन की अगुवाई करने वाले डब्ल्यूआरआई इंडिया के वरिष्ठ प्रबंधक अश्विनी हिंगने ने कहा कि कार्बन बाजार के रूप में भारत के पास एक जरिया है जो वैश्विक प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करते हुए उद्योग क्षेत्र से डीप डीकार्बोनाइजेशन को प्रोत्साहित करने के लिए सही नीति और मूल्य संकेत प्रदान कर सकता है। हमारे अध्ययन से यह पता चलता है कि एक सुव्यवस्थित

कार्बन मार्केट उत्सर्जन में कमी लाने की लागतों में कटौती करने की क्षमता रखने के साथ-साथ एमएसएमई क्षेत्र के डेकार्बोनाइजेशन के लिए जरूरी वित्तपोषण भी उपलब्ध करा सकता है।

ब्यूरो ऑफ एनर्जी एफिशिएंसी के महानिदेशक अजय बाकरे ने कहा कि ब्यूरो ऑफ एनर्जी एफिशिएंसी भारत के कार्बन व्यापार कार्य योजना को संचालित करेगा। उन्होंने कहा कि जैसे-जैसे अर्थव्यवस्थाएं परिपक्व होती जाएंगी वैसे-वैसे अगर हमें प्रदूषणकारी तत्वों के उत्सर्जन में कमी लाने के आक्रामक प्रयास करने हैं तो इसके लिए कार्बन मार्केट सबसे ज्यादा उपयोगी साबित होंगे। भारत में कार्बन बाजार की बहुत ठोस कार्य योजना बनाने के लिए भारत के ऊर्जा संरक्षण अधिनियम में कुछ बहुत प्रभावशाली संशोधन किए गए हैं। साथ ही साथ विभिन्न हितधारकों के साथ सलाह-मशवरा का दौर भी शुरू किया गया। हम यह सुनिश्चित करेंगे कि भारतीय बाजार अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप हो। हम प्रमाणनकर्ताओं के एक समूह के साथ-साथ एक ठोस इलेक्ट्रॉनिक मंच भी तैयार कर रहे हैं ताकि परियोजनाओं को पंजीकृत किया जा सके और ऋणों का प्रबंधन हो सके। साथ ही इससे उद्योगों के बीच बेहतर आत्मविश्वास भी पैदा होगा। वर्ष 2030 तक भारत का कार्बन बाजार दुनिया का अग्रणी कार्बन बाजार होगा। यह इस बात को सुनिश्चित करेगा कि यह बाजार बी कार्बोनाइजेशन के प्रयासों को आगे बढ़ाने में उद्योगों की मदद करें वही प्रौद्योगिकियों की लागतों में भी कमी आए। पिछले साल दिसंबर में भारत की संसद में ऊर्जा संरक्षण संशोधन अधिनियम 2022 को पारित किया था। इस विधेयक के माध्यम से ऊर्जा संरक्षण अधिनियम 2001 में संशोधन किया गया था। इस संशोधन का मकसद सरकार को भारत में कार्बन बाजार स्थापित करने में सक्षम बनानाऔर एक कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग योजना को संभव बनाना था।

केपीआईटी टेक्नोलॉजीज के अध्यक्ष और सह संस्थापक रवि पंडित ने कहा कि उद्योगों के सामने डीकार्बनाइजेशन के प्रयासों की अगुवाई करने का यह बेहतरीन अवसर है। कार्बन ट्रेडिंग उत्सर्जन में कमी लाने का एक दक्षतापूर्ण और प्रभावी रास्ता है। हमारे अध्ययन से पता चलता है कि प्रदूषणकारी तत्वों के उत्सर्जन में कमी लाने की लागत लगभग 28 प्रतिशत घट गई है डिजाइन प्रबंधन और क्षमता निर्माण पर ध्यान केंद्रित किया जाना बहुत महत्वपूर्ण है।

डब्ल्यूआरआई इंडिया में क्लाइमेट प्रोग्राम की निदेशक उल्का केलकर ने कहा कि भारत के कार्बन बाजार से उद्योगों को इस बात का स्पष्ट नीतिगत संकेत मिल सकता है कि वह अपने निवेश को कम कार्बन उत्सर्जन वाली प्रौद्योगिकियों की तरफ मोड़ दें। इस काम में एमिशंस रिपोर्टिंग और भारतीय उद्योग को तैयार करने के लिए लक्षित क्षमता निर्माण पर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

इंडोनेशिया कार्बन ट्रेड एसोसिएशन की अध्यक्ष डॉ रिजा सुआर्गा नेदेशों द्वारा अपने कार्बन बाजारों का ऐलान किए जाने के बीच अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता की जरूरत पर जोर देते हुए कहा कि इंडोनेशिया इस साल के मध्य तक कार्बन एक्सचेंज जारी करने की योजना बना रहा है। इंडोनेशिया की यह भी योजना है कि वह क्रॉस सेक्टरल कार्बन ट्रेडिंग भी करे आगे बढ़ते हुए एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य के महात्मा गांधी के दर्शन के साथ तालमेल बिठाते हुए, प्रक्रियाओं और मानकों को सुसंगत बनाना और अनुच्छेद 6 को लागू करने पर ध्यान केंद्रित करना महत्वपूर्ण है।

जीवनदायिनी नदियाँ, शीतलता प्रदान करती हैं, अपने शीतल जल से हमारी प्यास बुझाती हैं। विभिन्न शोधों से पता चला है कि जल प्रवाह कम होने और वायुमंडलीय तापमान बढ़ने से नदियों का जल उष्ण होने लगा है। हाइड्रोलॉजिकल प्रोसेसेस पत्रिका में प्रकाशित शोध के अनुसार नदियों में सभी भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाओं के लिए पानी का तापमान एक महत्वपूर्ण नियंत्रक होता है। यह उन जीवों के लिए अति आवश्यक है, जो स्वयं अपने शरीर के तापमान को नियंत्रित नहीं कर पाते,जैसे मछली, जिसके लिए यह बढ़ता तापमान बहुत ही हानिकारक सिद्ध होता है।

जीवनदायी नदियों का पर्यावरणीय महत्व

■ डॉ. श्रीमति सुनीता फड़नीस
(सेवानिवृत्त प्राध्यापक, माता जीजाबाई शा.क. महाविद्यालय इंदौर)

विश्व की बहुत सी जनसंख्या नदियों के आसपास ही रहती है। नदी पीने के पानी का एक मीठा और प्रमुख स्रोत होने के कारण बहुत से उद्योगों का आधार भी है, जो पानी के बिना नहीं चल सकते। अधिकतर देखा गया है कि नदियों के आसपास के कृषि क्षेत्र बहुत उपजाऊ होते हैं, जो इलाके की अर्थव्यवस्था में अहम भूमिका निभाते हैं।

नदियों का महत्व केवल मानव के लिए नहीं बल्कि पर्यावरण के लिए भी बहुत ज्यादा होता है। नदियाँ एक नहीं, बल्कि बहुत से पारिस्थितिकी तंत्रों को चलाने में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। ऐसे तो नदियों की उम्र काफी ज्यादा होती है, लेकिन मानवीय गतिविधियां नदियों के अस्तित्व को खतरे में डाल रही है। नदियाँ भूतल पर प्रवाहित जल धाराएं हैं। जिनका स्रोत प्रायः कोई झील, हिमनद, झरना या बारिश का पानी होता है। फिर अंत में ये सागर में जाकर मिल जाती हैं।

नदियाँ केवल कृषि के लिए उपयोगी नहीं, अपितु वे एक सभ्यता को जन्म देती है और मनुष्य का लालन-पालन करती हैं। इसलिए हमारी संस्कृति में नदी को देवी या माता का स्थान है। नदियाँ केवल जल स्रोत नहीं, आस्था का केंद्र होती हैं। पिछले 60-70 वर्षों के अनियंत्रित विकास और औद्योगीकरण ने नदियों को भी संसाधन बनाकर निचोड़ना शुरू कर दिया है। श्रद्धा भावना का लोप हुआ, उपभोग बढ़ता गया। चूंकि नदी से जंगल, पहाड़, वन्य पशु, पक्षी, मानव सभी जुड़े हैं, नदी का संकट सभी निर्जीव और सजीव प्राणियों का संकट है। यहाँ तक कि उनके अस्तित्व पर भी खतरा हो सकता है। असल में जैसे-जैसे सभ्यता का विस्तार हुआ प्रदूषण ने नदियों के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया। लिहाजा गर्मी के कारण नदियाँ दम तोड़ रही हैं।

अब जलवायु परिवर्तन ने अपनी नदियों को भी गर्म करना शुरू कर दिया है। जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के कारण विश्व की वायु गर्म होती जा रही है। इसका नदियों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। लेकिन इस ओर ध्यान कम जा रहा है। एक अमेरिकी अध्ययन में शोधकर्ताओं ने खुलासा किया है कि नदियाँ दुनिया के बाकी हिस्सों की तरह गर्म हो रही है और हालात इतने चिंताजनक है कि उनमें ऑक्सीजन कमी की दर महासागरों में हो रही कमी की तुलना में कहीं ज्यादा है। जिससे नदियों के पारिस्थितिकी तंत्र और जीव-जंतुओं को भारी नुकसान होगा। पेन स्टेट की एक अध्ययन शाला में शोधकर्ताओं ने 800 नदियों पर शोध करके पाया कि 87 प्रतिशत नदियाँ गर्म हो रही है और 70 प्रतिशत नदियों में ऑक्सीजन की कमी होने लगी है। अगले सात दशकों में नदियों में ऑक्सीजन की कमी से मछलियों की कुछ प्रजातियां पूर्णतया समाप्त हो सकती है। जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के कारण महासागर तो गर्म हो रहे हैं लेकिन नहीं लगता था कि ऐसा ही बहने वाली नदियों में भी होगा।

नदियों का जलीय जीवन मूल रूप से पानी के तापमान और ऑक्सीजन के स्तर पर ही निर्भर करता है। इस अध्ययन में बारिश, मिट्टी के विभिन्न प्रकार और सूर्य की रोशनी जैसे कारकों को भी शामिल किया गया था। शोधकर्ताओं ने पाया कि शहरों में बहने वाली नदियाँ अधिक तेजी से गर्म हुई है, वहीं ग्रामीण क्षेत्र की कृषि वाली नदियाँ धीरे-धीरे गर्म हो रही है। नदियों का ऑक्सीजन तेजी से कम हो रही है, जो कि उनके जैविक तंत्र के लिए अत्यधिक खतरनाक है।

नदियों का विश्व यातायात के लिए भी बहुत ज्यादा महत्व है। ऐसी कई नदियाँ विश्व में है, जो यात्रा के लिए जमीन के साधनों के मुकाबले यात्रा का आसान जरिया रही हैं। जो आज भी कायम है। इसके अलावा नदियों के जरिए सामान की आवाजाही भी होती है। इस तरह से नदियाँ विभिन्न संस्कृतियों के आदान-प्रदान का कारण भी बन जाती है।

पर्यावरण कहता है कि नदियाँ न केवल कई जीवों का आवास है, बल्कि नदियों के बाहर रहने वाले भी बहुत से जीव नदियों पर ही निर्भर है। इसलिए इस हिसाब से नदियाँ आसपास के पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने में एक मजबूत भूमिका निभाती है। लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण दुनिया के कई नदियाँ सिकुडने लगी हैं। भारत में ही बहुत सी नदियाँ गर्मी के मौसम में पूरी तरह सूख जाती है और केवल बारिश के दिनों में की मौसमी नदियाँ बन जाती है। पर्यावरण के लिए यह बहुत खतरनाक बात है।

भारत की सात नदियों- गंगा, कावेरी, साबरमती, तुंगभद्रा, मुसी, गोदावरी को भी इस तरह के अध्ययन में शामिल किया गया था। नदियों के किनारों पर बड़ी तादाद में वृक्षारोपण और नदी पुर्नस्थापना के द्वारा ही इस तापमान वृद्धि को संतुलित करने से ही नदी का तापमान नहीं बढ़ेगा। जीवन समाप्ति के इस खतरे को मानव ही बचा सकता है। विभिन्न माध्यमों द्वारा सरकार भी नदी बचाओं अभियानों को चला रही है, जागरूकता फैलाने की योजनाएं भी चला रही है, विश्व नदी दिवस जिसमें से एक प्रमुख अभियान है। जिसमें लोगों को नदी संरक्षण के बारे में बताया जाता है।

हमारे समय में श्रम की गरिमा

“स्वयं प्रकाश की एक कहानी है ‘अविनाश मोटू उर्फ एक आम आदमी’। कहानी एक ऐसे टेलिफोन मेकेनिक की है जो अपने काम से बेइंतहा प्रेम करता है और इसके चलते अपने साथियों में उपहास का पात्र भी बनता है। परिश्रम उसका जीवन दर्शन है लेकिन वह इसकी सैद्धांतिकी से सर्वथा अनभिज्ञ है और अपने आचरण से चुपचाप कर्म संस्कृति की वापसी कर रहा है, जो मनुष्यता के लिए जरूरी है। सवाल यह है कि क्यों किया जाए परिश्रम ? मशीन है तो! क्या विज्ञान ने तमाम आविष्कार हमारे जीवन को सुखी और आरामदायक बनाने के लिए नहीं किए हैं ? तो! ऐसे में हाथों से काम करना? और काम करने वाले! या तो बेचारे हैं वे या इतने नालायक कि साहब झाड़ू लगाने के अलावा कर क्या सकते हैं ये! किसी बड़े पद पर भी बैठ जाएं ‘ये’ तो अक्ल थोड़े आ जाएगी, जूते गांठने वाले ही रहेंगे। फिर अविनाश क्यों काम कर रहा है? काम से उसे प्यार कैसे है?”

यह सारी बातें कांचा आइलैया की पुस्तक ‘हमारे समय में श्रम की गरिमा’ पढ़कर मेरे मन में आई। आरक्षण का विरोध करते नवयुवक डॉक्टरों- इंजीनियरों को सबसे ‘सहज गांधीवादी’ तरीका नजर आता है वह है झाड़ू लगाना। क्योंकि झाड़ू लगाना सबसे घटिया काम है जिसके लिए किसी ज्ञान, कौशल या बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती। कांचा आइलैया इसी मिथक को तोड़ते हैं और आदिवासी पशुपालक, चर्मकार, किसान, कुम्हार, बुनकर, धोबी, नाई जैसे समुदायों के साथ जुड़े श्रम के गौरवपूर्ण अध्यायों की व्याख्या करते हैं। आदिवासी समुदाय पर लिखते हुए जो पहली बात पाठक के समक्ष रखते हैं वह यह है कि आखिर कब, कैसे, किसने तय किया होगा कि आम रसीला-स्वादिष्ट-स्वास्थ्यवर्द्धक फल है और रतनजोत के फल खाने से मृत्यु हो सकती है। इस ज्ञान को देने वाले आदिवासियों को हमारा

तकनीक संपन्न समाज जंगली समझकर दुत्कारता है, उन्हें दूसरे दर्जे का मनुष्य मानता है क्योंकि वे परिश्रम कर जीवन चलाते हैं। वे लिखते हैं- ‘मानव जाति के जीवित रह पाने का प्रमुख कारण है कि हमने सहस्त्राब्दियों से सही प्रकार के खाद्य पदार्थ खाए हैं। आज जो कन्द मूल हम खाते हैं, उन्हें जमीन से खोदना पड़ता है; जो फल हम खाते हैं उन्हें पेड़ों से तोड़ना पड़ता है; जो मांस हम खाते हैं, वह पशु-पक्षियों से मिलता है। यदि आदिवासियों ने ये कठिन काम न किए होते तो मनुष्य जाति जीवित न रह पाती।’ आगे वे स्पष्ट कहते हैं कि हमारी बुनियादी खाद्य संस्कृति विकसित करने की खातिर अपने जीवन और अंगों को खतरे में डालकर पाए ज्ञान को आदिवासियों ने दूसरों के साथ बांटा। तो क्या यह आधुनिक समाज की बिडम्बना और कृतघ्नता ही है कि वह परिश्रम को हेय समझता गया और जितनी अधिक मेहनत जो समुदाय करता उसे उतनी ही नीची नजर से देखने का अभ्यस्त होता गया? वहीं आगे पुस्तक में जब वे नाई समुदाय पर लिखते हैं तब और अधिक रोचक जानकारी मिलती है जो इस बिडम्बना को गहरा करती है। आइलैया बताते हैं कि ‘आधुनिक युग के पहले नाइयों के अलावा किसी भी अन्य जाति के लोग बीमारियों से पीड़ित लोगों को नहीं छूते थे। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अस्तित्व में आने तक नाई ही कई छोटी-मोटी शल्यक्रियाएं करते थे। उस्तरा चलाने में अपनी विशेषज्ञता के कारण वे रणभूमि में लगी चोटों का उपचार करते थे। वास्तव में शल्य चिकित्सा और बाल काटने के व्यवसाय में सहज संबंध है। शरीर के उस हिस्से पर जहां शल्यचिकित्सा होनी होती है, बालों की उपस्थिति के कारण संक्रमण हो सकता है। इसलिए शल्यक्रिया से पहले बालों को पूरी तरह साफ करना अनिवार्य होता है। यह चलन आज भी जारी है। अतः नाई भारतीय समाज के सबसे पहले चिकित्सक कहे जा सकते हैं। तमिलनाडु में आज भी नाई को ‘मरुत्तुवर’ कहा जाता है जिसका अर्थ होता है- चिकित्सक।’

और हां, जरा इसी प्रसंग में नाई समुदाय की स्त्रियों-दाइयों की भूमिका पर विचार करें। वेन होती तो गांवों में प्रसव कौन करवाता? आज भी आधुनिक चिकित्सा के इस बड़े अभाव को पूरा करने का दायित्व कौन उठा रहा है ? हम जानते हैं कि इस समुदाय की सामाजिक हैसियत डॉक्टर या नर्स वाली तो बिल्कुल ही नहीं है। भले बाजार में जावेद हबीब अपने सैलून की फ्रेंचाइजी महंगे दामों में देते हों।

‘गोदान’ पर विचार करते हुए समझ में आता है कि हमें अन्न देने वाले किसान की वर्गीय-सामाजिक स्थिति अन्नदाता की तो बिल्कुल नहीं है। सब्जी उगाने वाले और गली में सब्जी बेचने वाले दोनों को अपने श्रम का मूल्य मिले न मिले, सब्जी को गोदाम में जमा करने वाले पूंजीपति को हम पूरा आदर और धन देते रहेंगे। यह किताब ऐसी बिडम्बनाओं को बार-बार कुरेदती है और पाठक को विवेकवान बनाती है। कांचा आइलैया ने इस छोटी किंतु अत्यंत रोचक व पठनीय पुस्तक में इतिहास, विज्ञान और समाज विज्ञान के अनेक प्रसंगों को समाहित कर उपयोगी बनाया है। मसलन वे धोबियों पर लिखे अध्याय में बताते हैं कि ‘पुरानी पेशाब पहला डिटर्जेंट था’ या ‘प्राचीन रोम में कपड़े के टुकड़े पहले पुरानी पेशाब या अन्य क्षारीय घोलों में भिगोए जाते थे।’ कांचा आइलैया लिखते हैं- ‘जो लोग अज्ञानतावश धोबियों की निन्दा करते हैं उन्हें धुलाई के विज्ञान की खोज करने वाले इस समुदाय से सीख लेने की कोशिश करना चाहिए।’ वे आगे इस समुदाय में मौजूद लैंगिक समानता को भी अनुकरणीय बताते हैं- ‘जहां अधिकांश परिवारों में केवल महिलाएं कपड़े धोती हैं और अन्य घरेलू सफाई गतिविधियों का भार उठाती हैं, वहीं धोबियों में महिलाएं और पुरुष दोनों धुलाई का काम करते हैं।... सभी जातियों और समुदायों के पुरुषों और लड़कों को धोबी बिरादरी के उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए जो अपनी स्त्रियों के साथ मिलकर कपड़े धोते हैं। कोई भी अच्छा समाज महिला-पुरुष और लड़के-लड़की के बीच श्रम को लेकर भेदभाव नहीं करता।’

पशुपालक समुदायों को वे श्रेय देते हैं कि उनकी वजह से ही भारत का मांस और दुग्ध उद्योग फला-फूला है लेकिन हमारी जाति व्यवस्था ने इसे तुच्छ और गन्दा पेशा मान लिया। कांचा इस बिडम्बना को उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं- ‘आज भी पशु पालक समुदाय से आने वाले लालू प्रसाद यादव जैसे राजनेता का भैंसों से संबंध होने के कारण मखौल उड़ाया जाता है, जबकि यज्ञों में भाग लेने वाले और धार्मिक स्वामियों के पैरों पर गिरने वाले कई राजनेता उपहास का विषय नहीं बनते।’ चर्मकारों पर लिखे अध्याय में वे प्राचीन भारत और रोम में इस समुदाय के लोगों के लिए बनाए नियमों की तुलना करते हैं। जहां भारत में प्रावधान था कि ‘अछूत गांव के बाहर रहें, फेंके हुए कटोरों का प्रयोग करें और टूटे हुए बरतनों में भोजन करें। कुत्ते और बन्दर इनकी सम्पत्ति हों, (मनु स्मृति) वहीं ‘रोमन सम्राट डायोक्लेशियन द्वारा जारी किए गए फरमान के जरिए कई प्रकार के सामानों और सेवाओं के उच्चतम मूल्य तय किए गए, पुस्तक में विभिन्न श्रमिक जातियों पर लिखे ऐसे अध्यायों को कांचा बेहद तार्किक-रोचक व गंभीर बनाते हुए यह बताना नहीं भूलते कि वर्तमान व्यवस्था में इन्हें समान अवसर व आदर क्यों दिया जाए।

अन्त में लिखे गए वैचारिक अध्यायों में वे अपने निष्कर्षों को सैद्धान्तिक आधार देते हैं। वे लिखते हैं- ‘श्रम सभ्यताओं की प्राण शक्ति है। यदि श्रम को उपेक्षित किया जाता है तो हर समाज में आलस्य का कैंसर पैदा हो जाता है। भारत में श्रमिक समुदायों को अपमानित किया जाता रहा है और जो मेहनत का काम नहीं करते उन्हें ऊंचा दर्जा मिलता रहा है। श्रम के प्रति ऐसे नकारात्मक रवैए के कारण मजदूर जातियों को अछूत माना गया।’ आश्चर्य नहीं कि इसी रवैए ने लैंगिक विषमता को बढ़ावा दिया और औरतों को दूसरा दर्जा मिला। यदि हम अपना समाज उन्नत और वाकई सभ्य बनाना चाहते हैं तो इसके लिए जरुरी है कि समाज के सभी वर्गों-लोगों को समान अवसर, समान आदर और समान पारिश्रमिक मिले। इसके लिए श्रम की गरिमा को स्थापित करना असल चुनौती है। याद करें एक और कहानी। कफन। प्रेमचन्द ने कैसी विश्वसनीयता से बताया था कि जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना चाहते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहां इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। अपनी नयी पीढ़ी को हम घीसू और माधव चाहते हैं या अविनाश मोटू? मेहनत से काम कर आगे बढ़ता हुआ समाज चाहिए या अपने दुर्गुणों को ओढ़ता बिछाता नष्ट होता एक रुग्ण समुदाय? फैसला हमें ही करना है। और कहना न होगा कि हमारे स्कूल-कॉलेजों की शिक्षा वह सीढ़ी है जो परिश्रम के प्रति असम्मान के भाव को धो-पोंछ सकती है। शुरुआत यहीं से होनी चाहिए, तभी कांचा आइलैया जैसे बड़े समाज वैज्ञानिक चिन्तक स्कूली बच्चों और अध्यापकों के लिए ऐसी पुस्तक लिखने के लिए तत्पर हुए। अंग्रेजी की इस पुस्तक का हिन्दी संस्करण किसी दृष्टि से अनुवाद या पुनर्प्रस्तुति नहीं लगता, दुर्गाबाई व्याम के चित्र इसकी आभा को दुगुना करते हैं। चिन्ता यही होनी चाहिए कि भारत का हर विद्यार्थी और अध्यापक इसे कैसे पढ़े?

पल्लव
फ्लेट न. 393 डी.डी.ए., ब्लाक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेन्ट शालीमार बाग नई दिल्ली-110088
मो. 8130072004

बांस बायोफेंसिंगः प्रकृति का हरित जीवन का संरक्षक

■ Tuman Baruah
Bangalore

स्थायी समाधानों के निरंतर विकसित हो रहे क्षेत्र में बांस प्रकृति के चमत्कार के रूप में खड़ा है, जो बहुमुखी अनुप्रयोगों की पेशकश करता है जो इसकी सौंदर्य अपील से परे हैं. इसके असंख्य उपयोगों के बीच बांस बायोफेंसिंग के लिए एक

असाधारण उम्मीदवार के रूप में उभरा है, जो पर्यावरण संरक्षण में लहरें पैदा करने वाली एक हरित पहल है। प्राकृतिक अवरोध पैदा करने के लिए बांस एक आदर्श विकल्प क्यों है? यहां बांस बायोफेंसिंग की पर्यावरण-अनुकूल दुनिया पर एक नजर डालें।

बांस क्यों?

बांस, जिसे अक्सर 'हरा सोना' कहा जाता है, इसमें उल्लेखनीय गुण हैं जो इसे एक उत्कृष्ट बायोफेंसिंग सामग्री बनाते हैं। इसकी तीव्र वृद्धि, असाधारणतः शक्ति के साथ मिलकर इसे घुसपैठियों के खिलाफ एक मजबूत बाधा बनाती है। पारंपरिक बाड़ के विपरीत बांस बायोफेंसिंग एक नवीकरणीय संसाधन है, जो ऐसे युग में टिकाऊ प्रथाओं को बढ़ावा देता है जहां पर्यावरण संरक्षण सर्वोपरि है।

पर्यावरण की दृष्टि से सुदृढ़

अंतर्राष्ट्रीय बांस और रतन संगठन (आईबीआरओ) द्वारा किए गए शोध से पता चलता है कि बांस के जंगल कई अन्य प्रकार के पौधों की तुलना में अधिक कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करते हैं और वातावरण में अधिक ऑक्सीजन छोड़ते हैं। इसका मतलब यह है कि बांस न केवल प्राकृतिक बाधा प्रदान करता है, बल्कि यह जलवायु परिवर्तन से निपटने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है।

संपत्तियों की रक्षा के अलावा बायो फेंसिंग विभिन्न वन्य जीव प्रजातियों के लिए अनुकूल आवास बनाकर और इसके स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र को समृद्ध करके जैव विविधता को भी बढ़ावा देती है। इस प्रकार यह आपके परिवेश में असंख्य वनस्पतियों और जीवों को आमंत्रित करता है, जिससे मनुष्य और प्रकृति के बीच एक सामंजस्यपूर्ण संतुलन बनता है।

अब अपने पारिस्थितिक लाभों से परे बांस बायोफेंसिंग आर्थिक लाभ भी प्रदान करती है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा किए गए अध्ययनों से संकेत मिलता है कि बांस की खेती से विशेष रूप से स्थानीय समुदायों के लिए पर्याप्त आय उत्पन्न हो सकती है। बायोफेंसिंग के लिए उपयुक्त बांस की ढेर सारी प्रजातियों के साथ किसानों और उद्यमियों के पास पर्यावरण की सुरक्षा करते हुए स्थायी आजीविका विकसित करने का अवसर है।

स्थायी सुरक्षा के लिए एक स्थायी समाधान

पारंपरिक बाड़ के विपरीत, जिन्हें बार-बार रखरखाव और अंततः प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है, बांस बायोफेंसिंग को न्यूनतम रखरखाव की आवश्यकता होती है। बांस की कीटों और बीमारियों के प्रति प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता इसकी लंबी उम्र सुनिश्चित करती है, जो आपको निरंतर मरम्मत की परेशानी के बिना एक टिकाऊ समाधान प्रदान करती है। यह दीर्घायु दीर्घकालिक बचत और मन की शांति में तब्दील हो जाती है।

इस पर्यावरण-अनुकूल विकल्प को अपाकर हम एक हरित ग्रह में योगदान करने, स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देने और जैवविविधता के लिए स्वर्ग बनाने में मदद कर सकते हैं। जैसे-जैसे हम प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व की खोज में आगे बढ़ रहे हैं, बांस बायोफेंसिंग प्रकृति के ज्ञान का दोहन करने की शक्ति के प्रमाण के रूप में खड़ा है। आज ही हरे रंग का चुनाव करें और बांस को अपने घर के चारों ओर सुरक्षा का प्राकृतिक आवरण बुनने दें।

प्राकृतिक खेती अपनाने वाले एक करोड़ किसानों की मदद करेंगी सरकार

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने ऐलान किया है कि प्राकृतिक खेती करने के लिए अगले तीन साल तक 1 करोड़ किसानों की मदद की जाएगी। इसके लिए 10,000 बायो इनपुट रिसोर्स सेंटर खोले जाएंगे। पारंपरिक तरीके से खेती करने वाले किसानों को ये जानना जरूरी है कि प्राकृतिक खेती क्या होती है? इससे उन्हें क्या फायदा मिलेगा और सरकार इस पर इतना जोर क्यों दे रही है। दरअसल ऐसी खेती जिसमें किसी भी तरह के कैमिकल यानी रसायन का इस्तेमाल ना किया, प्राकृतिक खेती कही जाती है। प्राकृतिक खेती के लिए जैविक खाद व जैविक कीटनाशकों समेत अन्य प्राकृतिक चीजों का ही इस्तेमाल किया जाता है।

प्राकृतिक खेती में जमीन के प्राकृतिक स्वरूप को बनाए रखा जाता है। इसमें प्रकृति में बहुत आसानी से मिलने वाले जीवाणुओं और तत्वों का इस्तेमाल कर खेती की जाती है। इससे पर्यावरण को भी नुकसान नहीं होता है, साथ ही प्राकृतिक खेती में किसानों की लागत भी कम आती है। इसमें प्राकृतिक खाद, पेड़-पौधों के पत्ते से बनी खाद, गोबर खाद और जैविक कीटनाशक ही इस्तेमाल किए जाते हैं।

इन राज्यों में हो रही प्राकृतिक खेती

रसायनमुक्त खेती यानी प्राकृतिक खेती को मिट्टी की उर्वरक क्षमता बढ़ाने के साथ ही पर्यावरण की बेहतरी, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को खत्म करने या कम करते हुए किसानों की आय को बढ़ाने जैसे फायदे लेने के लिए शुरू किया गया है। दुनिया भर में प्राकृतिक खेती को धरती को बचाने वाली कृषि पद्धति माना जा रहा है। भारत में इस कृषि पद्धति को अपनाने वाले राज्यों में आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, केरल, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, ओडिशा, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु और अब उत्तर प्रदेश भी शामिल हैं। इसे भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति के तौर पर केंद्र प्रायोजित योजना परंपरागत कृषि विकास योजना के तहत बढ़ावा दिया जा रहा है।

कहां से शुरू हुई प्राकृतिक खेती

प्राकृतिक खेती जापान के किसान व दार्शनिक मासानोबू फुकुओका ने पर्यावरण को बचाने के लिए शुरू की थी। फुकुओका ने इस पद्धति का पूरा ब्योरा जापानी भाषा में लिखी अपनी किताब 'सिजेन नोहो' में किया है। इसलिए दुनिया भर में इस कृषि पद्धति को 'फुकुओका विधि' भी कहा जाता है। इस पद्धति में 'कुछ भी न करने' की सलाह दी जाती है। इसमें कहा जाता है कि किसान किसी भी तरह से जुताई, निराई-गुड़ाई न करें और ना ही उर्वरक या कीटनाशक डालें। भारत में खेती की इस पद्धति को 'ऋषि खेती' भी कहा जाता है।

क्या हैं प्राकृतिक खेती के फायदे

प्राकृतिक खेती से पहले साल उत्पादन में किसी तरह की गिरावट नहीं आती है। वहीं, रसायनों और खादों पर होने वाले हजारों रुपये का खर्च भी बच जाता है। यही नहीं, रसायनमुक्त होने के चलते प्राकृतिक खेती के जरिये पैदा होने वाली सब्जियां बाजार में जल्दी और ज्यादा कीमत पर बिक जाती है। इससे किसानों को कम खर्च पर ज्यादा आमदनी होती है। रासायनिक कीटनाशकों का इस्तेमाल फसलों पर करने से लंबे समय में लोगों के स्वास्थ्य पर असर दिखता है।

वहीं, जैविक कीटनाशकों के इस्तेमाल से ऐसी दिक्कतें नहीं होती हैं। इसके अलावा रासायनिक खाद का इस्तेमाल करने से जमीन की उर्वरक क्षमता धीरे-धीरे खत्म होने लगती है। इसके उलट जैविक खाद के इस्तेमाल से जमीन की उर्वरक क्षमता बढ़ती है। रासायनिक कीटनाशकों के इस्तेमाल से जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण बढ़ता है. वहीं, जैविक कीटनाशक किसी तरह का प्रदूषण नहीं करते हैं।

सफल कार्बन परियोजनाओं के माध्यम से अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देना : एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य

हाल के वर्षों में दुनिया ने जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने और कार्बन उत्सर्जन को कम करने में बढ़ती रुचि देखी है। एक प्रभावी दृष्टिकोण कार्बन परियोजनाओं का कार्यान्वयन रहा है, जो न केवल जलवायु परिवर्तन से निपटने में मदद करता है बल्कि आर्थिक विकास में भी योगदान देता है।

दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका सहित सभी महाद्वीपों में इन पहलों ने पर्यावरण और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं के लिए जीत-जीत परिदृश्य बनाने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया है। इन परियोजनाओं के गहन प्रभाव को मापने का एक तरीका कुछ सफल कार्बन पहलों का विश्लेषण और अन्वेषण करना है, जिन्होंने इन क्षेत्रों में स्थायी पदचिह्न छोड़े हैं।

दक्षिण अमेरिका में नवीकरणीय ऊर्जा पहल

दक्षिण अमेरिका ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के दोहन में उल्लेखनीय सफलता देखी है। ब्राजील और चिली जैसे देशों ने पवन और सौर ऊर्जा परियोजनाओं में भारी निवेश किया है। इन पहलों से न केवल कार्बन उत्सर्जन में कमी आई है बल्कि नौकरियां भी पैदा हुई हैं और निवेश आकर्षित हुआ है। ब्राजील विशेष रूप से अपशिष्ट से ऊर्जा परियोजनाओं में अग्रणी रहा है, जो जैविक कचरे को स्वच्छ ऊर्जा में परिवर्तित करता है। इस पहल ने न केवल कचरे को लैंडफिल से हटा दिया है बल्कि बिजली भी पैदा की है। ब्राजील के पर्यावरण मंत्रालय की 2021 की रिपोर्ट के अनुसार इन परियोजनाओं ने ब्राजील की जीडीपी में लगभग 0.3 प्रतिशत जोड़ा। यह दर्शाता है कि कैसे अभिनव समाधान एक साथ कार्बन उत्सर्जन को कम करते हुए आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकते हैं।

■ Chubasenla Jamir
Bangalore

अफ्रीका में स्वच्छ खाना पकाने के समाधान और पुनर्वनीकरण के प्रयास

अफ्रीका में लाखों परिवार पारंपरिक खाना पकाने के तरीकों पर निर्भर हैं जो हानिकारक इनडोर वायु प्रदूषण पैदा करते हैं। इस समस्या से निपटने के लिए युगांडा ने 2019 में ग्रामीण समुदायों को स्वच्छ खाना पकाने के स्टोव वितरित करने के लिए एक परियोजना शुरू की। इससे न केवल कार्बन उत्सर्जन में कमी आई बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य देखभाल की लागत कम हो गई। विश्व बैंक द्वारा 2019 में किए गए अध्ययन के अनुसार इस परियोजना ने अपने नागरिकों की समग्र भलाई में सुधार करके युगांडा की जीडीपी में 1.2 प्रतिशत की वृद्धि में योगदान दिया।

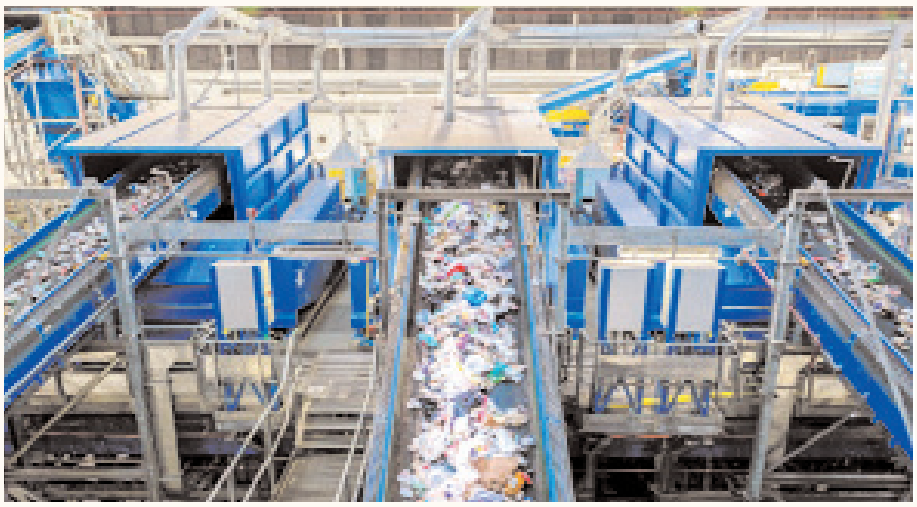

अफ्रीका के लिए स्वच्छ खाना पकाने के समाधान केवल एक उपयोगी यात्रा की शुरुआत थे। अपने हरे-भरे परिदृश्यों का लाभ उठाते हुए इथियोपिया और केन्या जैसे देशों ने 2020 से महत्वाकांक्षी वृक्षारोपण अभियान शुरू किया है। परियोजनाएं न केवल मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती हैं बल्कि बेहतर आजीविका के अवसर भी पैदा करती हैं। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन में पाया गया की केन्या में लगाए गए प्रत्येक मिलियन पेड़ों के लिए 5,000 से अधिक नौकरियां पैदा हुई, जिससे पता चलता है कि कार्बन परियोजनाएं स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को कैसे मजबूत कर सकती हैं।

सतत विकास और पर्यावरणीय समृद्धि के लिए एक मॉडल

कार्बन ऑफसेट कार्यक्रमों ने विश्व स्तर पर लोकप्रियता हासिल की है, जिससे व्यक्तियों और व्यवसायों को उन परियोजनाओं में निवेश करने की अनुमति मिलती है जो उत्सर्जन को कम करते हैं या अन्यत्र उत्सर्जन पर कब्जा करते हैं। दक्षिण अमेरिकी और अफ्रीकी देशों ने कार्बन ऑफसेट बाजारों में भाग लेकर इस प्रवृत्ति का लाभ उठाया है। विशेष रूप से अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में सफल कार्बन परियोजनाओं ने दिखाया है कि जलवायु परिवर्तन को संबोधित करना और अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देना साथ-साथ चल सकता है। चूँकि दुनिया जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से जूझ रही है, ये उदाहरण सतत विकास के लिए प्रेरणा के रूप में काम करते हैं जिससे पर्यावरण और स्थानीय अर्थव्यवस्था दोनों को लाभ होता है।

मोटा अनाज उत्पादन में दुनिया के 5 वें स्थान पर है भारत

भारत में मोटे अनाज के अंतर्गत ज्वार, बाजरा, रागी, सावां, कंगनी, चना, कोदो और कुटकी फसलें आती हैं। भारत को मोटे अनाज उत्पादन में पांचवा स्थान प्राप्त है आज कल तरह-तरह की बीमारियाँ जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप तथा कैंसर आदि बीमारियाँ होने लगी है। इन बीमारियों का मुख्य कारण हमारा खान पान तथा हमारी जीवनचर्या है। हमारा खानपान उन फसलों के उत्पाद पर निर्भर हो गया है जो रासायनिक खाद तथा कीटनाशी के प्रयोग से पैदा की जा रही है। जिसके कारण हमारे भोजन में भी रासायनिक खाद तथा कीटनाशी के अंश जा रहे है। मोटा अनाज की ज्वार, बाजरा, रागी, सावां, कंगनी, चना, कोदो और कुटकी आदि फसलें खरीफ के मौसम में पैदा होती है। खरीफ की फसलों में रासायनिक खाद तथा कीटनाशक का उपयोग बहुत कम या नहीं के बराबर होता है। मोटा अनाज उत्पादन के लिए राजस्थान ओर मध्यप्रदेश के वनांचल से जुड़े क्षेत्र में सबसे उपयुक्त वातावरण है। यहाँ पर मोटा अनाज प्रचुर मात्रा में पैदा होता है। बाजरा उत्पादन में राजस्थान का प्रथम स्थान है। मोटे अनाज की फसले स्थानीय फसलें है जो स्थानीय वातावरण के अनुसार अनुकूलित है। वर्तमान में मोटे अनाज के उत्पादन तथा विपणन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इस तरह फसलों को बढ़ावा दिया जा रहा है जिनका मनुष्य के स्वास्थ्य से कोई वास्ता नहीं है। मोटे अनाज में ग्लूटिन की मात्रा बहुत कम होती है जो मधुमेह जैसी बीमारी से बचाती है तथा पाचन तंत्र को मजबूत करती है। मोटा अनाज को बढ़ावा देना स्थानीय कृषि खाद्य प्रणालियों को बदलने का एक तरीका है।

आज से 300-400 साल पहले मोटा अनाज भारत की परंपरागत फसलें थी जिसे 1960 के दशक में हरित क्रांति आने के बाद से काफी नुकसान पहुँचा। क्योंकि मोटा अनाज उगाए जाने वाले बड़े क्षेत्र को हरित क्रांति के अंतर्गत उगई जाने वाली फसलों (गेंहू और चावल) के लिए प्रयोग किया जाने लगा था। जिससे हमारी परंपरागत फसलों को असाधारण नुकसान पहुँचा। भले ही हरित क्रांति का मुख्य कारण हमारी बढ़ती जनसंख्या एवं आर्थिक परिस्थितियाँ थी। किंतु इससे हमारी परंपरागत मोटा अनाज की फसलों को काफी नुकसान पहुँचा था। यह कहना गलत नहीं होगा कि मोटा अनाज विलुप्ती के कगार पर पहुँच चुका था। ज्वार तथा बाजरे को छोड़कर मोटे अनाज की अधिकतर खेती आदिवासी क्षेत्र में की जाती है। आदिवासी समुदाय का मुख्य भोजन ही मोटा अनाज है। सरकार मोटे अनाज के लिए कोई नीति नहीं होने के कारण ज्वार तथा बाजरे को छोड़कर अन्य मोटे अनाज पर उत्पादन बढ़ाने के लिए न तो ज्यादा शोध हुआ है और ना ही सरकार की तरफ से कोई प्रयास हुआ है। सरकार आदिवासी क्षेत्र में जहां पहले मोटा अनाज होता था वहाँ मक्का बीज के साथ-साथ मोटे अनाज के उन्नत बीज वितरित कर के अंतराष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष 2023 को बढ़ावा देना चाहिए। मोटे अनाज के उन्नत बीज बाँटने से आगामी वर्ष में किसान स्वयं का बीज काम में ले सकेगा, किसान को बाजार से बीज नहीं खरीदना पड़ेगा। लोगों को मोटे अनाज को भोजन में शामिल करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। मोटे अनाज को मिड-डे मील, आंगनवाड़ी केंद्र, रेल्वे केटेरिंग, इंदिरा रसोई, छात्रावास, पुलिस/आर्मी, बड़े भंडारे तथा लंगर के भोजन में शामिल करने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिससे लोगों को हानिकारक रसायन मुक्त भोजन मिल सके और मोटे अनाज को बढ़ावा मिल सके।

उत्तम सेहत का खजाना है मोटा अनाज

मोटा अनाज 130 से अधिक देशों में उगाए जाने के कारण पूरे एशिया और अफ्रीका में आधे अरब से अधिक लोगों के लिए पारंपरिक भोजन माना जाता है। मोटा अनाज पूरी दुनिया में आजीविका के अवसर उत्पन्न करने, किसानों की आय बढ़ाने और खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने की उनकी विशाल क्षमता के आधार पर महत्वपूर्ण हैं। वैश्विक उत्पादन में लगभग 41 प्रतिशत की अनुमानित हिस्सेदारी के साथ भारत दुनिया में मोटा अनाज के प्रमुख उत्पादकों में से एक है। मोटा अनाज की विशाल क्षमता को पहचानते हुए जो संयुक्त राष्ट्र के कई सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) के साथ भी मेल खाती है, भारत सरकार (जीओआई) ने मोटा अनाज को प्राथमिकता दी है।

पर्यावरण संरक्षण में मधुमक्खियों की अहम भूमिका

"मधुमक्खी कीट वर्ग का महत्वपूर्ण जीव है, जो कृषि तथा बागवानी फसलों का महत्वपूर्ण परागक हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि मानव आहार का एक तिहाई भाग परोक्ष रूप से मधुमक्खियों के परागण से ही प्राप्त होता है। परागण एक अनिवार्य पारिस्थितिक सेवा है जो वन्य पादप समुदायों के साथ-साथ कृषि की उत्पादकता को बनाए रखने की दृष्टि से भी बेहद ही महत्वपूर्ण है।"

मानव अस्तित्व को बचाए रखने के लिए इस महवपूर्ण जीव को हम नजरअंदाज करके पर्यावरण बचाने के हमारे प्रयासों को पूर्ण नहीं मान सकते है। रॉयल ज्योग्राफिक सोसाइटी ऑफ लंदन की एक बैठक में अर्थवॉच इंस्टीट्यूट ने मधुमक्खी को इस ग्रह पर सबसे महत्वपूर्ण प्रजाति के रूप में घोषित किया है। इसके साथ ही यह परेशान करने वाली खबर भी आ रही है कि यदि मधुमक्खियों की संख्या इस धरती से निरंतर घटती गई तो मानव जाति बहुत जल्द खतरे की कगार पर खड़ी होगी। मधुमक्खियों का विलुप्त होना मानव जाति के लिए विनाशकारी होगा क्योंकि वे बिल्कुल भी इरिप्लेसेबल हैं।

ज्ञातव्य हो की मधुमक्खिया पृथ्वी के सबसे पुराने जीव है जिनका अस्तित्व आदि काल से रहा है। प्रतिवर्ष जीवों एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेकों दिवस, सप्ताह, पखवाड़ा मनाये जाते है पर अहम् सवाल हम सभी के सामने है की की क्या हम सिर्फ दिवस को मनाकर अपनी जिम्मेदारियों को पूर्ण कर सकते है, संरक्षण की दिशा में किये गए जमीनी स्तर के निरंतर प्रयास ही इस दिशा में हमारे उद्देश्य को पूर्ण कर सकेंगे।

खाद्य सुरक्षा एवं जैवविविधता संरक्षण एवं पारिस्थिकीय सेवाओं में इस जीव के महत्वपूर्ण योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

अगर मानव जाति अपने सबसे लाभदायक जीव मधुमक्खियों के बारे में कुछ नहीं करती है तो वैज्ञानिकों और वन्यजीव विशेषज्ञों के अनुसार, 'मधुमक्खियां को उन प्रजातियों की सूची में शामिल हो जाएगी जो निकट भविष्य में विलुप्त होने के कगार पर हैं।'

■ आनंद पटेल
लेखक पर्यावरणविद है

इस ग्रह पर मधुमक्खियों की 20,000 से भी अधिक प्रजातियां है, जिनमें से सिर्फ 4 प्रकार की मधुमक्खियां ही शहद बना सकती है। परागणकों पर सीधे निर्भर रहने वाली वैश्विक फसलों की कुल कमाई मूल्य 235 बिलियन डॉलर से 577 बिलियन डॉलर प्रतिवर्ष है। इसे प्रकृति का एक मुफ्त उपहार समझना चाहिए जो अब धीरे-धीरे गायब होने की कगार पर है।

विषाक्त कीटनाशकों, विशेष रूप से न्यूरोटॉक्सिन और प्राकृतिक विकल्पों के उपयोग पर तत्काल प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता है। कृषि में पोलिनेटर के अनुकूल व्यवहार एक जरूरी है। इसके लिए किसानों को विशिष्ट फसलों के परागण की जरूरतों के बारे में पता होना चाहिए और उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। वैश्वीकरण के कारण अन्य क्षेत्रों से कीटों और रोगजनकों के संचरण ने कुछ क्षेत्रों में मधुमक्खियों की आबादी को प्रभावित किया है। माना जा रहा है कि मोबाइल टेलीफोन द्वारा निर्मित तरंगों के कारण भी ये विलुप्त हो रहे हैं।

वनस्पतियों में परागण क्रिया: मधुमक्खियां पेड़ पौधों के पराग कणों को एक पौधों से दूसरे पौधों तक पहुंचाने में मदद करती हैं। जब मधुमक्खी किसी एक फूल पर बैठती है तो उसके पैरों और पंखों में पराग कण चिपक जाते हैं और जब यह उड़कर किसी दूसरे पौधे पर बैठती है, तब यह पराग कण उस पौधे में चले जाते हैं और उसे निषेचित कर देते हैं इससे फल और बीजों की उत्पत्ति होती है।

भारतीय उपमहादीप में मधुमक्खियो की चार प्रजातियाँ मिलती है।

■ **एपीस डोरसेटा:** ऊँचे और खुले स्थानों में बनाना पसंद करती है। सभी भारतीय मधुमक्खियों में यह आकार में बड़ी होती है।

■ **एपीस फ्लोरिया:** यह भी खुले स्थानों में छत्ते का निर्माण करती है।

■ **एपीस सेरेना:** अन्य प्रचलित नाम सतपुड़ी, सतघरा,सतमुडी आदि स्थानीय नामों से भी जाना जाता है। यह अंधेरे में रहना पसंद करती है और यह एक से अधिक सामानांतर छत्तों का निर्माण पेड़ के कोटर, चट्टानों, मिट्टी के बमीठो, चट्टानों आदि में करती है।

■ **एपीस ट्राईगोना:** यह डंक रहित मधुमक्खी है जिसे कोथी, कोतीयार आदि स्थानीय नामों से भी जाना जाता है। यह मधुमक्खी पेड़ के कोटर दीवाल में अपना घर बनाती है।

भारतीय प्रजाति की दो मधुमक्खियों का पालन हम कर सकते है जिसमे ऐपिस सेरेना जिसे सतपुड़ी कहते है और एपीस ट्राईगोना जिसे कोती मधुमक्खी कहते है। यह एक डंक रहित मधुमक्खी है। विज्ञान की भाषा में मधुमक्खी पालन को एपीकल्चर कहा जाता है।

मधुमक्खियों से सम्बंधित कुछ रोचक तथ्य

■ मधुमक्खी का छत्ता मोम का बना होता है जो इनके पेट की ग्रंथियो (मोम ग्रंथियों) से निकलता है। इसमें छोटे-छोटे छिद्र रूपी कोष बने होते है। फूल के रस को इन्ही कोषों में रखा जाता हैं। छत्ते में कुल 6 कोने होते है।

■ मधुमक्खी के जीवन चक्र में चार अवस्थाये होती है:- अंडा, लारवा, प्यूपा और व्यस्क

■ शहद मे फ्रक्टोस की मात्रा अधिक होने की वजह से यह चीनी से भी 25 प्रतिशत अधिक मीठा होता है।

■ एक किलो शहद तैयार करने के लिए के लिए पूरे छत्ते की मधुमक्खियों को लगभग 40 लाख फूलों का रस चूसना पड़ता है।

■ एक किलो शहद के निर्माण के लिए करीब 20 हजार मधुमक्खियां पृथ्वी के 6 चक्कर लगाने के बराबर सफर तय कर लेती है।

■ 20 मई, 2018 को संपूर्ण विश्व में पहला 'विश्व मधुमक्खी दिवस' मनाया गया।

मधुमक्खी का परिवार :- ■ एक मधुमक्खी के परिवार में 20 हजार से लेकर 30 हजार तक मधुमक्खियां होती है जिसमे एक रानी कुछ 100-200 की संख्या में ड्रोन जिन्हें नर कहते है और शेष कामकाजी मधुमक्खियां होती है। मधुमक्खियों में श्रम का बंटवारा कार्य के आधार रहता है। ■ रानी मधुमक्खी की उम्र 2-3 साल तक होती है। ■ रानी मधुमक्खी एक दिन में 200 से लेकर 500 तक अंडे देती है (पूरे जीवन पर्यन्त)

मधुमक्खियों को खतरे

आज खेती में रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग, जंगलों के कटने और साथ ही शहद का संग्रहण परंपरागत तरीके से करने के कारण आज मधुमक्खियां खत्म होने की कगार पर आ पहुची है। देशी प्रजाति की मधुमक्खियां भी आज हमारे आसपास और जंगलों में पहले की अपेक्षा बहुत कम देखने को मिल रही है।

कुछ प्रमुख कारण

■ मधुमक्खी क्लोनियों से शहद निकालने की परंपरागत विधियों का उपयोग (धुँआ/छाते काटकर एवं जलाकर)
■ किसानों तथा जन-सामान्य में मधुमक्खियों सहित अन्य परागकों द्वारा निभाई जाने वाली उल्लेखनीय भूमिका के प्रति जागरूकता की कमी।
■ खेती में कीटनाशकों का प्रयोग
■ तापमान में बढ़ोत्तरी एवं मौसम चक्र में परिवर्तन
■ प्राकृतिक आपदाएं तथा समय-समय पर वनों में आग लगना।
■ भूमि उपयोग में परिवर्तन, एकल फसलों की खेती।
■ देशी परागकों के संरक्षण की दिशा में न्यूनतम प्रयास।
■ वनों की अप्रत्याशित कटाई।

मधुमक्खियों से होने वाले फायदे

■ **परागण क्रिया:** अधिकांश फसलों, फल एवं सब्जिया में क्रॉस परागण होता है जिससे कारण फूल से फल बनने की प्रक्रिया बढ़ जाती है।
■ **शहद:** प्राकृतिक शहद की प्राप्ति।
■ **मोम:** यह प्राकृतिक मोम है जो की सौन्दर्य प्रसाधन बनाने और पोलिश आदि करने में प्रयुक्त होता है।
■ **पराग (पोलन):** यह प्रोटीन का उत्तम स्त्रोत्र है।
■ **प्रोपोलिस:** न्यूरोलॉजिकल रोगों इसका प्रयोग होता है।
■ **रॉयल जेली:** हमारे इम्यून सिस्टम को मजबूत करने में मददगार होती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है।

मधुमक्खियों के संरक्षण के लिए आप और हम क्या कर सकते है :-

■ **लोगों को जागरूक करके :** आमजन और लोगों को मधुमक्खियों से होने वाले फायदों से अवगत कराके।
■ परंपरागत तरीको से शहद संग्रहण की जगह सतत एवं वैज्ञानिक तरीकों जिससे मधुमक्खियो एवं उनके छत्तों को बिना नुकसान पहुंचाए शहद का संग्रहण किया जा सके।
■ कृषि में जैविक पद्धतियों को अपनाकर जिसमें केमिकल कीटनाशकों का बिना प्रयोग किये/ कम से कम प्रयोग करके इन मित्र कीटों को बचा सकते है।
■ मधुमक्खियों का आधुनिक एवं वैज्ञानिक तरीकों से पालन कर हम इनके संरक्षण में योगदान दे सकते है।

प्रकृति की मांग प्राकृतिक खेती

खेती को जिस तरह उद्यम बनाने की होड़ है, उसमें यंत्रों और रासायनिक उर्वरकों का अतार्किक उपयोग देखा जाता है। अनेक विदेशी कंपनियां अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का विकास करने में लगी हैं। पहले जो कृषि अनुसंधान केंद्र देश की जलवायु और मिट्टी की प्रकृति का ध्यान रखते हुए बीजों का विकास किया करते थे, अब वे हाशिए पर चले गए हैं। ऐसे में सरकार को न केवल प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहित करने, बल्कि बीज, खाद, रसायन बनाने वाली कंपनियों पर भी नियंत्रण रखने की जरूरत है।

रंजना मिश्रा

प्राकृतिक खेती हमारी परंपरा से जुड़ी हुई है और अब यह समय की मांग बन चुकी है। खेती के आधुनिक तौर-तरीके अपनाकर हमने अपनी खाद्य जरूरतों को तो पूरा कर लिया, मगर दूसरी ओर रसायन के अंधाधुंध प्रयोग की वजह से, हमारी धरती और हमारे जीवन पर इसका बहुत दुष्प्रभाव पड़ा है। रासायनिक खेती के कारण धरती की घटती उर्वरा शक्ति और बढ़ते प्रदूषण ने पूरी दुनिया को चिंता में डाल दिया है। मगर इसका समाधान हमारी परंपरागत खेती यानी प्राकृतिक खेती में मौजूद है। अब भारत में इस ओर ध्यान दिया जा रहा है। इस तरीके से की जाने वाली खेती में फसलों में जलवायु परिवर्तन की मार को सहन करने की ताकत रहती है। इसमें लागत कम आती, पानी की बचत होती और उत्पादन भी बढ़ जाता है।

भूमिगत जल में मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं रसायन

दरअसल खेती में रसायनों का प्रयोग न केवल मिट्टी को कमजोर करता, बल्कि फसलों को भी जहरीला बना देता है। रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक पर्यावरण को भी प्रदूषित कर रहे हैं। कई बार मानक से ज्यादा कीटनाशक पाए जाने पर विदेशी खरीददार हमारी फसलों को खरीदने से मना कर देते हैं। ये रसायन भूमिगत जल में मिल कर उसे प्रदूषित कर देते हैं। इसीलिए अब प्राकृतिक खेती समय की जरूरत भी बन गई है।

केंचुओं की संख्या बढ़ाने में सहायक होती है गाय के गोबर-मूत्र की गंध

मिट्टीमें सोलह तरह के पोषक तत्व पाए जाते हैं, जो फसलों की अच्छी बढ़वार और ज्यादा पैदावार के लिए जरूरी हैं। इनमें से एक भी तत्व की कमी हो जाने पर, बाकी पंद्रह तत्वों का भी विशेष लाभ फसल को नहीं मिल पाता। देसी गाय के गोबर में ये सभी तत्व मौजूद रहते हैं। गाय के गोबर और मूत्र की गंध, केंचुओं की संख्या बढ़ाने में सहायक होती है और ये केंचुए किसानों

के मित्र माने जाते हैं। इसमें सिंचाई भी पौधों से कुछ दूरी पर की जाती है, जिसमें केवल दस फीसद पानी लगता है। प्राकृतिक खेती में पौधों की दिशा उत्तर-दक्षिण रखी जाती है, ताकि पौधों को सूरज की ऊर्जा और रोशनी ज्यादा समय तक मिले। इससे पौधों का अच्छा विकास हो जाता है, उनमें न सिर्फ कीट लगने की आशंका कम हो जाती है, बल्कि पौधों में पोषक तत्व भी संतुलित मात्रा में एकत्र हो जाते हैं। प्राकृतिक कृषि में मुख्य फसल के साथ सहयोगी फसलों को भी उगाया जा सकता है। खेती करने के इस तरीके में देसी बीजों की भी काफी अहम भूमिका होती है। देसी बीज पोषक तत्व कम लेते और पैदावार ज्यादा देते हैं। भारत में प्राकृतिक खेती की शुरुआत सुभाष पालेकर ने की।

कीटनाशक मानव स्वास्थ्य व जैव विविधता के लिए खतरा

पहले उन्होंने अपने फार्म में रासायनिक तरीके से ही खेती करनी शुरू की। मगर कई वर्षों के बाद उन्हें प्राकृतिक खेती का विचार उपनिषदों और वेदों से मिला। इन धार्मिक ग्रंथों में प्रचलित कुछ सूत्रों से प्रेरित होकर उन्होंने प्राकृतिक खेती की शुरुआत की और इस पर वैज्ञानिक शोध शुरू किए। वे खेती के ऐसे तरीके तलाश करने लगे, जिससे मिट्टी में मौजूद जीवों की रक्षा हो सके और ये तभी संभव था, जब खेत जहरीले रसायनों से मुक्त हों और मिट्टी की सेहत मजबूत हो।

पालेकर ने रासायनिक खेती करते हुए पाया कि लगभग बारह-तेरह वर्षों तक तो खेती में पैदावार बढ़ती रही, लेकिन उसके बाद घटनी शुरू हो गई। इसके अलावा आदिवासियों के साथ काम करते हुए उन्हें पता चला कि जंगलों में पौधों के विकास के लिए किसी बाहरी तत्व की जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि बढ़वार के लिए जरूरी सभी साधन प्रकृति से ही उपलब्ध हो जाते हैं। छह साल की कड़ी मेहनत के बाद उन्होंने बिना रसायनों वाली प्राकृतिक खेती की तकनीक विकसित करने में सफलता हासिल की। इसका उन्होंने नाम दिया- 'कम लागत प्राकृतिक खेती'। अब वे पूरे भारत में इसे प्रोत्साहित कर रहे हैं।

बदलते वक्त में प्राकृतिक खेती की जरूरत

खासकर छोटे और सीमांत किसान इसे लेकर

खाद्य जरूरतें भी पूरी होगी, धरती की उर्वरा शक्ति भी बढ़ेगी

काफी उत्साहित हैं, क्योंकि इसमें उर्वरकों और कीटनाशकों पर कोई खर्च नहीं आता और उपज भी भरपूर मिलती है। ऐसे किसानों के पास आय के काफी कम साधन होते हैं और खेती में लगने वाली भारी लागत इनकी कमर तोड़ देती है। कई लोगों को लगता है कि प्राकृतिक खेती से शुरुआत में उपज कम रहेगी, लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं है। पहले ही साल में किसान भरपूर उपज ले सकते हैं।

खाद और कीटनाशक, खेती के लिए जरूरी होते हैं। इन्हें घर पर ही मौजूद सामग्री से बनाया जा सकता है। इसमें खाद के रूप में जीवामृत और घनजीवामृत तैयार किए जाते हैं। यह खाद मिट्टी की भौतिक दशा को सुधार देती है। इसी तरह कीटनाशक बनाने के लिए गोबर, गोमूत्र, पौधों के पत्ते, तंबाकू, लहसुन और लाल मिर्च का प्रयोग किया जाता है।

जलवायु संकट और खेती पर खतरे

खेती को अक्सर मौसम की मार झेलनी पड़ती है, जिससे किसानों का बहुत नुकसान होता है और कड़ी मेहनत करने के बावजूद उनकी फसलें बर्बाद हो जाती हैं। ऐसे में प्राकृतिक खेती के तरीके अपनाकर इन चुनौतियों का समाधान निकल सकता है। प्राकृतिक खेती में फसलें मौसम की मार और जलवायु में हो रहे परिवर्तन को आसानी से सहन कर लेती हैं। रासायनिक खेती में लागत अधिक आती है और रसायनों ने जिस तरह से मिट्टी की उपजाऊ शक्ति पर वार किया है, उससे यह लागत और बढ़ जाती है। ऐसे में प्राकृतिक खेती किसानों के मन में नई उम्मीदें जगा रही है। बढ़ती लागत और रसायनों से परेशान बहुत से किसान प्राकृतिक खेती को अपनाने लगे हैं। यह रासायनिक खेती की तुलना में कम खर्चीली और बेहतर मुनाफा देने में सक्षम है।

बुंदेलखंड में जल संरक्षण के जखनी मॉडल से प्रदेश के दूसरे क्षेत्रों में भी पानी बचाने की पहल

दरअसल, मिट्टी में पाए जाने वाले जीव मित्र ही खेती में बेहद सहायक होते हैं। रसायनों के प्रयोग से वे मरने लगते हैं, जिससे धीरे-धीरे धरती की उपजाऊ शक्ति कम होने लगती है और वो बंजर होने की कगार तक पहुंच जाती है। प्राकृतिक खेती में प्रयुक्त खाद और जीवामृत मिट्टी में पाए जाने वाले इन जीव मित्रों की संख्या को कई गुना बढ़ा देते हैं, जिससे धरती की उर्वरता, फसलों की गुणवत्ता और मात्रा में भी बढ़ोतरी होती है। इसमें न तो खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है और न ही पानी की। इस तरह यह खेती हर प्रकार से किसानों, धरती और पर्यावरण के लिए बहुत ही उपयोगी है। मगर खेती को जिस तरह उद्यम बनाने की होड़ है, उसमें यंत्रों और रासायनिक उर्वरकों का अतार्किक उपयोग देखा जाता है। अनेक विदेशी कंपनियां अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का विकास करने में लगी हैं। पहले जो कृषि अनुसंधान केंद्र देश की जलवायु और मिट्टी की प्रकृति का ध्यान रखते हुए बीजों का विकास किया करते थे, अब वे हाशिये पर चले गए हैं। ऐसे में सरकार को न केवल प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहित करने, बल्कि बीज, खाद, रसायन बनाने वाली कंपनियों पर भी नियंत्रण रखने की जरूरत है।

मोटे अनाजों की खेती है फायदे का सौदा, कम पानी में होता है अधिक उत्पादन

मोटे अनाज स्वास्थ्य के लिए जितने लाभदायक हैं, इनकी खेती भी उतनी ही सहज है। मोटे अनाज अपने पोषण से भरपूर गुणों के लिए तो जाने जाते ही हैं। तो वहीं किसान सीमित साधनों में भी मोटे अनाजों की खेती कर बेहतर मुनाफा कमा सकते है। आइए जानते हैं कि मोटे अनाजों को अन्य फसलों की तुलना में सिंचाई के लिए कितने पानी की जरूरत होती है।

भारत सरकार की पहल के बाद वर्ष 2023 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने इंटरनेशनल इयर ऑफ मिलिट्स घोषित किया हुआ है। इसके साथ ही मोटे अनाजों की लोकप्रियता दुनिया भर में होने लगी है। वहीं देश में भी मोटे अनाजों का उत्पादन बढ़ाने की तैयारियां तेज हो गई है। इसके लिए कई राज्य सरकारें किसानों को बढ़ावा दे रही है। हालांकि किसानों के सामने फसल चक्र में बदलाव करना अभी एक चुनौती की तरह है, लेकिन, सच ये है कि मोटे अनाज स्वास्थ्य के लिए जितने लाभदायक होते हैं, इनकी खेती उतनी ही सहज है। कुल मिलाकर मोटे अनाजों की खेती किसानों के लिए फायदे का सौदा है, जो कम पानी में अधिक उत्पादन देने में सक्षम है।

मोटे अनाजों के विशेष गुण

मोटे अनाज अपने कई गुणों के लिए जाने जाते हैं, जिसमें से पोषणयुक्त खाद्य पदार्थ होना इनका प्रमुख गुण है। इसके साथ साथ ये सीमित व्यवस्थाओं में भी पैदावार देने की क्षमता रखते हैं। ये खनिज पदार्थों और मिनिरल्स से भरपूर होते हैं। यही कारण है कि दुनिया भर के लोगों को पोषण से भरपूर भोजन देने के लिए इनके इस्तेमाल को बढ़ावा दिया जा रहा है।

अन्य फसलों की तुलना में ढ़ाई गुना कम पानी की जरूरत

अधिकांश लोगों को मोटे अनाजों के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। दरअसल इनकी खेती बहुत पहले और सीमित व्यवस्थाओं के समय की जाती थी। कृषि क्षेत्र का विस्तार और आधुनिकता के कारण लोगों ने मोटे अनाजों की खेती को महत्व देना कम कर दिया। पिछले कुछ सालों से इन्हें फिर से चलन में लाने का प्रयास जोरों पर है। मोटे अनाजों की खेती की बात करें तो अन्य फसलों की तुलना में मोटे अनाजों को सिंचाई के लिए ढ़ाई गुना कम पानी की जरूरत होती है। असल में मोटे अनाजों का महत्वपूर्ण गुण उसकी बुआई और उपज ही है। इसकी खेती करने के लिए न ही बहुत अधिक भूमि की तैयारी करने की जरूरत है और न ही बहुत अधिक सिंचाई की। ये असिंचित भूमि में भी इनकी खेती संभव है। मोटे अनाज अन्य फसलों की तुलना में ढाई गुना कम पानी में भी अच्छी पैदावार देते हैं।

ये हैं मोटे अनाज

मोटे अनाजों के बारे में कम लोगों को ही सही जानकारी है। कुछ लोगों का मानना है कि चावल और गेहूं भी मोटे अनाजों की लिस्ट में शामिल हैं, लेकिन, ऐसा नहीं है। ज्वार, बाजरा, रागी, कंगनी, कोदो, कुटकी, चना मुख्य मोटे अनाज हैं जो अपने पोषण गुणों और सीमित व्यवस्थाओं में अधिक पैदावार देने के लिए जाने जाते हैं।

तपती धरती संपादक मण्डल
सलाहकार संपादक गौरीशंकर मुकाती
संपादक प्रहलाद शर्मा
प्रबंध संपादक श्रीराम माहेश्वरी, भोपाल
अंतर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि संदीप राय चौधरी, सिंगापुर
राष्ट्रीय प्रतिनिधि विक्रांत तिवारी, मुम्बई

मोटे अनाज पर सरकार का जोर, किसानों को कितना फायदा

बजट में वित्त मंत्री ने मोटे अनाज को श्रीअन्न का नाम दिया है और उसके उत्पादन को बढ़ाने की बात की है, लेकिन क्या किसानों को सीधा फायदा हो पाएगा?

2023 को अंतरराष्ट्रीय मिलेट्स या मोटा अनाज वर्ष के तौर पर घोषित किया गया है। केंद्र सरकार बढ़ चढ़कर इस अनाज को प्रोत्साहित कर रही है और इसके प्रचार और उत्पादन बढ़ाने पर जोर दे रही है। मोटे अनाज में ज्वार, बाजरा, रागी, कुट्टु, काकुन, चना, सांवा, कोदो आदि शामिल हैं। उप सहारा अफ्रीका और एशिया के लाखों छोटे किसान इन्हें आवश्यक मुख्य अनाज की फसलों के रूप में उगाते हैं। मोटे अनाज को गरीबों का अनाज भी कहा जाता है। इसके कई कारण हैं जैसे कि इसका इस्तेमाल भोजन, चारा और जैव ईंधन बनाने के लिए होता है।

मोटे अनाज को बढ़ावा देने योजना

एक फरवरी को पेश बजट में वित्त मंत्री ने ऐलान किया कि बाजरा, कोदो, सांवा जैसे मोटे अनाज को बढ़ावा देने के लिए श्रीअन्न योजना शुरू की जाएगी। उन्होंने कहा कि हम परंपरा में शामिल अच्छा स्वास्थ्य देने वाले भोजन कर सकें और दुनिया को भारत की परंपरा से अवगत करा सकें।

सीतारमण ने अपने भाषण में कहा कि भारत मिलेट्स को लोकप्रिय बनाने के काम में सबसे आगे है, जिसकी खपत से पोषण, खाद्य सुरक्षा और किसानों के कल्याण को बढ़ावा मिलता है। उन्होंने आगे कहा कि भारत विश्व में श्रीअन्न का सबसे बड़ा उत्पादक और दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक है। भारत में कई प्रकार के श्रीअन्न की खेती होती है, जिसमें ज्वार, रागी, बाजरा, कुट्टु, रामदाना, कंगनी, कुटकी, कोदो, चना और सामा शामिल हैं।

ठोस नीति की कमी

हालांकि जानकार कहते हैं कि बजट में मोटे अनाज को लेकर जो कुछ कहा गया है वह सिर्फ एक प्रचार भर है। उनका मानना है कि बजट में वित्त मंत्री ने मोटे अनाज पर बात की है लेकिन उन्हें यह नहीं नजर आता कि इससे किसानों की आय में ज्यादा बढ़ोतरी कैसे होगी। उनका कहना है कि मोटे अनाज को लेकर पब्लिसिटी अच्छी है और लोगों को जागरूक किया जा रहा है कि इसे खाने से सेहत अच्छी रहेगी।

वो कहते हैं कि लेकिन कोई ठोस नीति नहीं है कि सरकार किसानों से मोटा अनाज खरीदेगी की नहीं या कोई स्कीम होगी जिसमें लोगों को मोटा अनाज सरकार से मिलेगा। अगर इस तरह की कोई स्पष्टता होती तो ज्यादा बेहतर होता। वैसा कुछ नहीं है।

मोटे अनाज के लिए रिसर्च इंस्टीट्यूट

वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में मोटे अनाज को लेकर कई फायदे भी गिनाए। उन्होंने कहा कि इन अनाजों के ढेरों स्वास्थ्य फायदे हैं और यह सदियों से हमारे भोजन का मुख्य अंग बने रहे हैं। उन्होंने कहा कि भारत को श्रीअन्न के लिए वैश्विक केन्द्र बनाने के लिए भारतीय बाजरा अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद को उत्कृष्टता केन्द्र के रूप में बढ़ावा दिया जाएगा, ताकि यह संस्थान सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों, अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साझा कर सके।

विशेषज्ञों ने यह भी सवाल उठाए कि आखिर किसान आखिर मोटे अनाज को क्यों उगाएगा। वो कहते हैं कि उसके इसे उगाने के लाभ क्या है। अगर सरकार कहती है कि किसान जो मोटा अनाज उगाएगा उसे वह खरीदेगी तो किसान आश्वस्त होगा, लेकिन वैसा कुछ बताया नहीं गया है। हालांकि मोटे अनाज की खेती के लिए किसानों को धान के मुकाबले पानी की कम जरूरत पड़ती है और यूरिया अन्य रसायनों की जरूरत नहीं पड़ती है।

एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया भर में पैदा होने वाले मोटे अनाज में 41 प्रतिशत तक भारत में पैदा होता है। साल 2021-22 में मोटे अनाजों को एक्सपोर्ट करने में भारत ने 8 प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज की है। भारत में पैदा होने वाले मोटे अनाज जैसे बाजरा, रागी, ज्वार और कुट्टु अमेरिका, यूएई, ब्रिटेन, नेपाल, सऊदी अरब, यमन, लीबिया, ओमान और मिस्र जैसे देशों में निर्यात किए जाते हैं। 2018 में भारत सरकार ने मोटे अनाज को पोषक अनाज की श्रेणी रखते हुए इन्हें बढ़ावा देने की शुरूआत की थी। मौजूदा समय में 175 से अधिक स्टार्टअप मोटे अनाज पर काम कर रहे हैं।

इसी साल भारत में होने वाले जी-20 सम्मेलन में विदेशी नेताओं के सामने मोटे अनाज से बने पकवानों भी परोसें गये थे।